(लेख)

महिला सुरक्षा : कानून से आगे समाज की ज़िम्मेदारी

प्रस्तावनाः

एक लड़की जब घर से बाहर निकलती है, तो उसके हाथ में सिर्फ बैग या मोबाइल नही होता- उसके साथ चलता है डर. डर देर हो जाने का, सुनसान रास्तों का, अनचाही नज़रों का, और उस समाज का जो सवाल हमेशा लड़की से ही पूछता है- "तुम बाहर क्यों थी?". महिला सुरक्षा आज सिर्फ कानूनों या अभियानों का मुद्दा नही रह गया है, यह हर उस लड़की की रोज़मर्रा की हकीकत है जो आज़ादी और सुरक्षा के बीच किसी एक को चुनने पर मजबूर कर दी जाती है. जहाँ एक ओर लड़कियाँ सपने देखने की हिम्मत करती हैं, वही दूसरी ओर उन्हें हर कदम पर खुद को "सुरक्षित" साबित करना पड़ता है. यह लेख महिला सुरक्षा की उसी सच्चाई पर दस्तक है, जो अक्सर आँकड़ों और भाषणों के बीच दबा दी जाती है.

मुख्य भागः

महिला सुरक्षा की समस्या केवल किसी एक घटना या किसी एक स्थान तक सीमित नही है. यह सार्वजनिक स्थानों, कार्यस्थलों, शैक्षणिक संस्थानों, परिवहन के साधनों और डिजिटल दुनिया तक में फैली हुई है. एक लड़की का अकेले बस में सफर करना, देर शाम तक पढ़ाई या काम के कारण बाहर रहना, या सोशल मीडिया पर अपनी राय रखना-हर स्थिति में उसे किसी न किसी तरह की असुरक्षा का सामना करना पड़ता है. यह असुरक्षा केवल शारीरिक नही, बल्कि मानसिक और भावनात्मक भी होती है. सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि हमारे समाज में अपराध के बाद सवाल अक्सर पीड़िता से ही पूछे जाते हैं. उसके कपड़े, उसका समय, उसकी जगह और उसके व्यवहार को जाँचने-परखने की कोशिश की जाती है, जबकि अपराधी की सोच और संस्कारों पर बहुत कम चर्चा होती है. बचपन से ही लड़कियों को "संभलकर रहने" की सीख दी जाती है, लेकिन लड़कों को यह नही सिखाया जाता कि उन्हें दूसरों की सीमाओं और सम्मान का ध्यान रखना चाहिए. यही सोच महिला सुरक्षा की सबसे बड़ी बाधा बन जाती है.

हालाँकि देश में महिला सुरक्षा के लिए कई कानून मौजूद हैं, लेकिन ज़मीनी हकीकत अक्सर इनसे मेल नही खाती. शिकायत दर्ज कराने में डर, सामाजिक बदनामी का भय और न्याय प्रक्रिया में देरी- ये सभी कारण महिलाओं को चुप रहने पर मजबूर कर देते हैं. जब पीड़िता को ही बार-बार खुद को साबित करना पड़े, तो सुरक्षा केवल काग़ज़ों तक सिमट कर रह जाती है.

समाज और परिवार की भूमिकाः

महिला सुरक्षा की शुरुआत परिवार से होती है. अगर घर में ही लड़कियों पर ज़्यादा पाबंदियाँ और लड़कों को ज़्यादा छूट दी जाती है, तो असमानता सामान्य बन जाती है. जब बेटियों को चुप रहना और समझौता करना सिखाया जाता है, और बेटों के गलत व्यवहार को "नादानी" कहकर टाल दिया जाता है, तब समाज अनजाने में असुरक्षा को बढ़ावा देता है. समाज अक्सर महिला की सुरक्षा को उसकी आज़ादी से जोड़ देता है, जबकि सच्चाई यह है कि सुरक्षा सीमाओं से नही, सम्मान से आती है. मीडिया, शिक्षा और कार्यस्थलों की भूमिका भी यहाँ महत्वपूर्ण है. ज़रूरत इस बात की है कि "बेटी बचाओ" जैसे नारों से आगे बढ़कर "बेटा जिम्मेदार बनाओ" की सोच को अपनाया जाए.

समाधान और आगे का रास्ताः

महिला सुरक्षा के लिए निवारक और जागरूकता आधारित कदम ज़रूरी हैं. शिक्षा व्यवस्था में लैंगिक समानता, सहमति और सम्मान की समझ को प्राथमिकता दी जानी चाहिए. शिकायत प्रक्रियाओं को सरल, सुरक्षित और पीड़िता-केंद्रित बनाया जाए, ताकि महिलाएँ बिना डर के अपनी बात रख सकें. सार्वजनिक स्थानों पर बेहतर रोशनी, सीसीटीवी निगरानी और त्वरित सहायता तंत्र आवश्यक हैं. कार्यस्थलों और शिक्षण संस्थानों में आंतरिक शिकायत समितियों को सक्रिय और प्रभावी बनाना भी उतना ही ज़रूरी है. सबसे अहम, समाज को चुप दर्शक बनने के बजाय गलत के खिलाफ खड़ा होना होगा.

निष्कर्षः

महिला सुरक्षा किसी एक वर्ग की जिम्मेदारी नही, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है. सच्ची सुरक्षा तब आएगी जब हर महिला बिना डर के अपने सपने जी सके. कानूनों के साथ-साथ सोच में बदलाव ही वह रास्ता है, जो महिला सुरक्षा को काग़ज़ों से निकालकर हकीकत बना सकता है.

सकीना खातून
राजनीति विज्ञान
2025-29
251888